अंतरा-शब्दशक्ति

मेरो मन आनंद

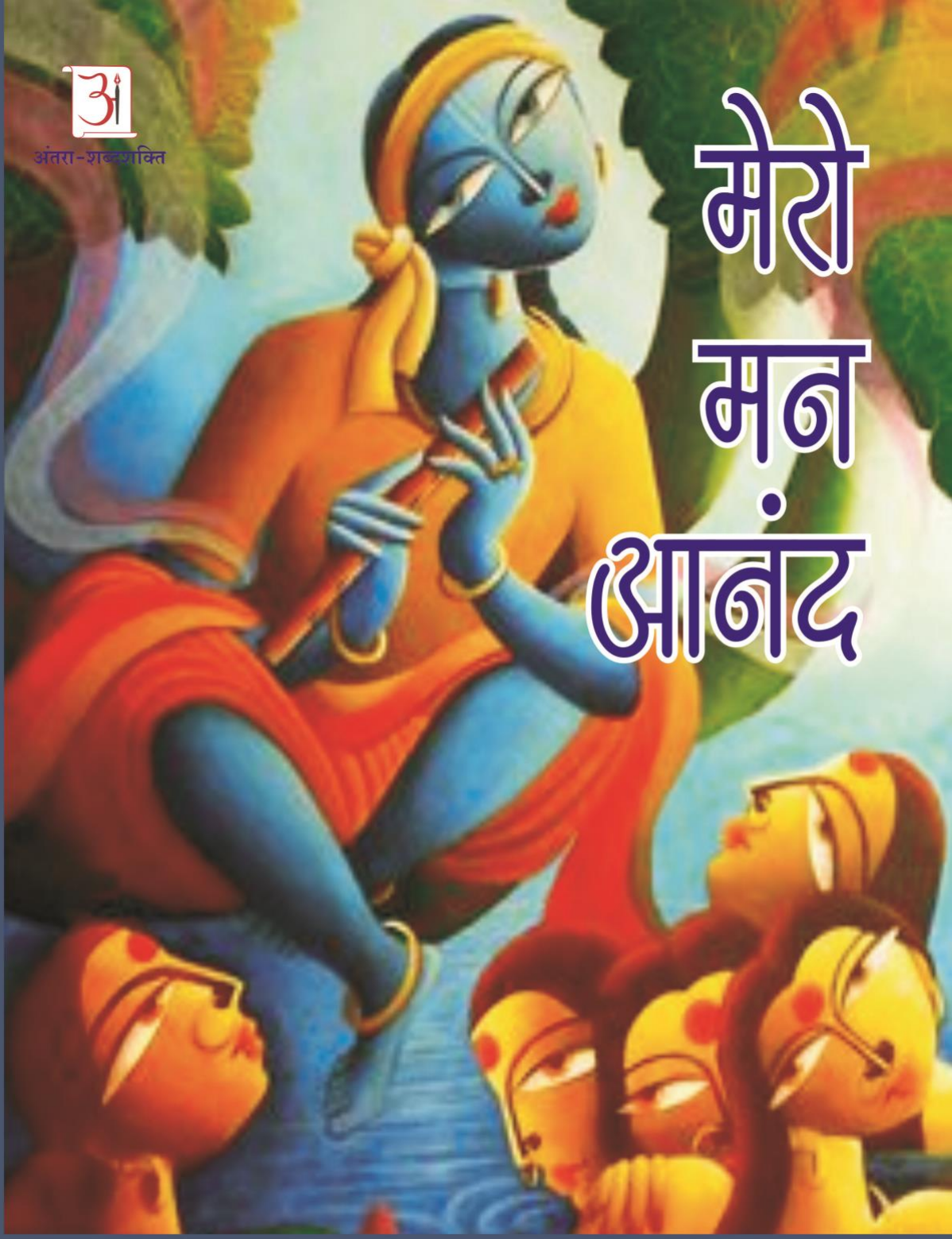

आलेख संग्रह

अलका रागिनी

मेरो मन आनंद

(आलेख संग्रह)

अलका रागिनी

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- 978-93-86666-16-1

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन

मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१

शाखा- एस-२०७, नवीन भवन, इंदौर प्रेस क्लब परिसर, इंदौर (म.प्र.) ४५२००१

दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९

अणुडाक- antrashabdshkti@gmail.com

अंतरताना- www.antrashabdshakti.com

प्रथम संस्करण २०१८- अलका रागिनी

मूल्य - ५५.०० रुपये

आवरण चित्र- संदीप सोनी, वारासिवनी

मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी

Mero Man Anand by Alka Ragini

वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

आध्यात्मिक भाव

अध्यात्म जीवन को शोभित एवं सुरभित करता है। आध्यात्मिक भाव भावना हमारी मानवीय प्रकृति को और भी नये रूप-रंग प्रदान करती है। जीवन फिर गीत बन जाता है जिसकी धुन पूरी सृष्टि को गुंजायमान करती है। जीवन में नये रस का संचार हो जाता है। अध्यात्म का फलादेश है अपने आत्मस्वरूप में हम वापस लौट आते हैं। जहाँ प्रेम, करुणा, उदारता, दया, क्षमा जैसे कई गुण हमारे भीतर प्रकट होने लगते हैं। हमारे भीतर दूसरे के प्रति क्षमा भाव, कृतज्ञता का भाव आने लगता है। एक शब्द में कहें तो अध्यात्म मनुष्यत्व से देवत्व तक कि यात्रा का नाम है। जब हमारी पूरी प्रकृति ही ईश्वरीय भाव से भीग जाती है। ग्रंथों में आया है, 'अध्यात्म स्वभावो उच्चते' अर्थात स्वभाव में लौटने का नाम अध्यात्म है। आज जब पूरी सृष्टि में कोलाहल है ऐसे में अध्यात्म विश्रामदायक सिद्ध हो सकता है। अंतर्मन की शक्ति अगर कहीं संभव है तो वो अध्यात्म ही है। जहाँ आनंद का, उल्लास का एवं प्रफुल्लता का वातावरण है। हम सबकी पहली मांग आनंद है और जहाँ से आंनद की प्राप्ति होगी वो अध्यात्म है।

अलका रागिनी

अनुक्रमणिका

परोपकारः पुण्याय	5
पापाय परपीडनम्	10
आश्रम एक व्यवस्था	15
अध्यात्मिक होने का अर्थ	19
अध्यात्म की प्रासंगिकता	22
अध्यात्म एक राह	26

परोपकारः पुण्याय

मानव जीवन में आनंद, प्रशन्नता का केंद्र आध्यात्मिक जीवन ही है। जिसके द्वारा हम अपनी प्रसन्नता को बनाये रखनें में सक्षम हो सकते हैं। क्योंकि संसार स्वयं नश्वर है, और यहाँ के व्यक्ति, वस्तु, पद्धति सभी दिनों-दिन ह्रास की ओर कदम बढ़ा रहें हैं।। जहाँ दुःख है, क्लेश है, पीड़ा है, रोग है, भय है, द्वन्द्व है, लोभ है, अभिमान है, क्रोध है, और भी परिवर्तनशील विचार, भाव, चिंतन हम मनुष्यों को कभी प्रसन्नता तो कभी अप्रसन्नता का अनुभव कराते हैं। आज प्रसन्नता का कारण बना व्यक्ति, वस्तु, पदार्थ, भय, राग, द्वेष-क्लेश, पीड़ा का कारण बन जाता है। इसलिए सभी शास्त्र ग्रन्थों ने संसार को नश्वर-दुःखालय माना है।

अध्यात्मिक मार्ग में पथिक को जिसका लक्ष्य ईश्वरीय अनुभूति को पाना मात्र है, संत जनों ने विभिन्न साधन मार्गो के अनुशरण की बात कही है। सभी साधनों का उद्देश्य मात्र अपने अन्तकाल की पवित्रता, सुनिश्चितता, एकाग्रता, प्रखरता और अहम् शून्यता है।

साधनों द्वारा अपने ऊपर पड़े हुए धुल को साफ करना होता है। असंख्य उर्मियाँ जो मन-बुद्धि को तंरगित करती है, उन्हें स्थिरता प्रदान करना है, और फिर अज्ञानता का पर्दा उठानें के लिए है। साधनों का उद्देश्य बस इतना ही है, कि हम ईश्वर की प्राप्ति के योग्य बन सकें।

इसी क्रम में पाप और पुण्य, शब्द की व्याख्या अध्यात्म मार्ग में आई है। ग्रन्थ कहते हैं- जिसमें दूसरो का अहित हो मनसा-वाचा-कर्मणा वो पाप है, और जिस विचार चिंतन कर्म से औरो का हित सिद्ध होता है, वो पुण्य है, चूंकि पाप और पुण्य की भावना का तात्पर्य बस इतना समझना है, कि हम मनुष्य शुभ सकंल्पों से युक्त हो सके। ग्रन्थों का उद्देश्य बस इतना ही है कि मनुष्य लोभपूर्वक, भयपूर्वक जैसे भी हो ईश्वर पथ की यात्रा में आगें बढ़ सकें, क्यांकि बिना शुभ विचार के भावना को, ईश्वर चिंतन में उतरना भी सम्भव नहीं है। उसे अनुभव करना तो कठिन कार्य है। इसलिए जगह-जगह शास्त्र-ग्रन्थ शुभ कार्यो को करने के प्रोत्साहित करते है। जिससे हमारे भीतर गुण विकास हो सके।

जैसे-जैसे शुभ कार्यो द्वारा स्तर बढ़ता है। चेतना उन्नत होती है। फिर पथिक अगला कदम बढ़ाता है। कर्म

अब सकामता से निष्कामता में प्रवेश कर पाते हैं। अर्थात जो कर्म, या परोपकार जो कुछ भी हम कर रहे थे आरम्भ में फल की कामना को लेकर चल रहे थे, अब वो कामना रहित हो जाते हैं। अथवा वो अपने अंतकाल की प्रवृतियों में अब ईश्वरीय गुणों का प्रवाह शुभ हो जाता है। जैस, उदारता क्षमा, दया, करूणा, मैत्री आदि।

इसके पश्चात् ज्ञान के कपाट खुलते है। ज्ञान दो प्रकार का होता है, आध्यात्मिक मार्ग में दो प्रकार के ज्ञान की चर्चा है। एक शास्त्रों-ग्रन्थों को सुन कर पढ़ कर, दूसरा अनुभव के द्वारा ज्ञान कर्म योग के पश्चात प्रथम ज्ञान का द्वार खुलता है। संत महापुरूषों के सानिध्य बुद्धि को प्रखर बनाने लगती है। फिर धीरे-धीरे विवेक शक्ति का उदय होने लगता है। संत सानिध्य से भक्ति भाव का प्रभाव होने लगता है।

अब अध्यात्म में ये साधन पध्दति है, जिसमें अपने समस्त अंतकाल को मन, बुद्धि, चित्त, अंहकार को सहज रूप में ढालने का प्रयास होता है, लेकिन कभी-कभी साधनों का संग हमें मार्ग अर्थात लक्ष्य से विमुख कर सकता है। अगर हम जागरूक न रहे। परोपकार, पुण्य, उदारता, क्षमा, करूणा, मैत्री का मात्र साधन स्वरूप है। अर्थात् साधना का रूप है। जैसे नदी जब अपने उद्गम से निकलती है, अगर सागर तक ना पहुँचे तो बीच में अटक जाती है। फिर धीरे-धीरे समय में प्रवाह से उसका अस्तित्व खत्म

होने लगता है। मान लो नदी परोपकार की भावना महत्वपूर्ण खेतों में अटक जाए तो क्या होगा? वैसे ही हम भी अपने साधनों को और उसके फल को सच मानकर सत्य से कभी-कभी अलग हो जाते है। इसलिए विवके पूर्वक विचार करके आगे का मार्ग प्रसस्त करना होगा। आत्म कल्याण को सर्वोपरि मानते हुए लोक कल्याण की भावना को अपने भीतर धारण करना होगा। मनुष्य जीवन का एकमात्र लक्ष्य आत्म कल्याण करना है। अर्थात् अपने स्वरूप को उपलब्ध होना। परोपकार, पुण्य कर्म, सभी गुण विकास के लिए सीढ़ियाँ है। जब ईश्वरीय गुणों का प्रवाह होने लगा अथवा वो ज्ञान की भूमिकाएँ वृध्दि को प्राप्त होने लगी, भक्ति-भाव प्रकटने लगी तो अपने लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए आगे कदम उठाना श्रेयकर है। अगर इस जीवन को नदी माने तो लक्ष्य सागर है। हाँ, ये सच है कि नदी अपने उद्गम से निकलती है, और समुद्र में मिलने तक अनेक परोपकार के कार्यो को करती रहती है। लेकिन अंतिम लक्ष्य या उसकी पूर्णता तो सागर में समाने में ही निहित है।

इस प्रकार आध्यत्मिक साधनों के रूप में परोपकार, लोककल्याण की भावना अन्तकाल के साधनों का माध्यम है। अंतिम लक्ष्य तों आरम्भ कल्याण ही है। सभी शास्त्र, ग्रन्थ, संत एक पल में मनुष्य जीवन को ही भगवन प्राप्ति का मार्ग स्वीकार करते हैं। इसलिए अगर हम आध्यात्मिक

प्राणी है तो इस दिशा में हमें अपने लक्ष्य को नहीं भूलना चाहिए।

तात्पर्य है कि पुण्य कर्म परोपकार की भावना, साधन स्वरूप है। ये हमारें मन बुद्धि चित को साधना के उच्चतम शिखर तक पहुँचानें के लिए महत्वपूर्ण है। अखिरी बात आत्मकल्याण ही है। अथवा वो ईश्वरीय भाव-भावना में प्रवेश पाना है। अपने स्वरूप से परिचित होना है। ईश्वरीय प्रेम को अनुभव करना है। एक संत अपनी वाणी में कहते हैं- "जगत की चिन्ता जगन्नाथ को करने दो।" वैसे भी अगर हम ईश्वर पथ पर चल रहें हैं, तो इतना तो अवश्य है कि हमसें किसी का अहित नहीं हो सका। अपने मनुष्य जन्म के हेतु को ध्यान में रखकर आगे कदम बढाते चलना है। कई बार हमारी परोपकार की भावना संसार के विषयों में संशय भी पैदा कर देती है। यश, मान, कीर्ति, प्रलोभन का भाव कई बार मार्ग को अवरोधित कर देता है। इसलिए अगर हम आध्यात्म मार्ग के माध्यम है, तो सतर्कता पूर्वक इस बात को भी समझना होगा।

पुराणो में, शास्त्रों में, ग्रंथों में, जितने भी साधन है, सब उस ईश्वरीय प्रेम को पाने की सीढ़ियाँ है। जिस प्रकार अपने गंतव्य तक पहुँचने के लिए हम किसी महत्वपूर्ण वाहन का उपयोग करते हैं, लेकिन अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उससें उतराना ही पड़ता है, नहीं तो हम सिर्फ यात्री ही बने रहेगें। इस प्रकार विवेक पूर्वक, विचार करके आध्यात्मिक पथ पर कदम बढ़ाना होगा।

पापाय परपीडनम्

आध्यात्म मार्ग में शास्त्रों व ग्रन्थों में नाना प्रकार की अनुकूलता-प्रतिकूलता का वर्णन किया गया है। जो पथिक को एक मार्गदर्शन के रूप में प्राप्त होता है। ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में कई तरह की बात आती है जिन्हें अपना कर हम उस परम् सत्ता की दूरी तय कर सकते है। वहीं कुछ निषेध की भी चर्चा है। जो हमें नहीं करना है। लेकिन जाने अनजाने हमसे कोई ऐसा कार्य हो ही जाता है। जो निषेध है। उसी क्रम में पाप शब्द का प्रयोग शास्त्र, ग्रन्थ, करते हैं। पाप अर्थात जिसमें दूसरों को मनसा, वाचा, कर्मणा हम दुःख देते हो, इसे पाप के रूप में हम ले सकते हैं ।

मानव शरीर जिस प्रकृति से निर्मित है, वो लाभ-हानि, जय- पराजय, सुख-दुःख, को साथ लेकर चलती है। जब तक अपने स्वरूप की प्राप्ति नहीं हो जाती तब तक ये द्वन्द्व खत्म नहीं होते। द्वन्द्व अर्थात किसी व्यक्ति, वस्तु, पद्धति, भाव, संवेदना के प्रति हमारी एक निर्णायक शक्ति का विकास नहीं हो पाता। इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। जैसे लोभ, प्रलोभन, मोह और भी अंतकाल की

प्रकृतियाँ जो जन्म-जमान्तर से हमारा पीछा कर रही हैं। उनका प्रभाव हमारे निर्णायक शक्ति को प्रभावित करता है। इसी संदर्भ में हम दूसरो का अहित चिंतन भी करते हैं। कभी कभी कर्मो में और वाणी में भी उसका दर्शन होता है। शास्त्रों, ग्रन्थों में जिसे निषेध घोषित किया गया है। उसे अपने- अपने वर्णक्रम व्यास्था के अनुसार कुछ विभिन्न निषेध की चर्चा है। हम उनकी सीमा को पार कर जाते है, जो कालान्तर में कर्म बन्धन का कारण भी बन जाता है। अर्थात् जो कुछ गलत हुआ है, उसे काल- प्रकृति हमारे कर्मो के खाते में जोड़ देती है, और फिर वो हमारे लिए एक ऐसी पोटली बन जाती है, जो जन्म-जन्मान्तर की यात्रा में साथ चलती है अथवा कहीं न कहीं, कभी न कभी वो हमारे जीवन में अपना प्रभाव देखती है। अगर जीवन में क्लेश, आशान्ति, पीड़ा, दुःख, परेशानियाँ है, तो शास्त्र कहते हैं, उसके मूल में कोई निषेध काम कर रहा है।

लेकिन शास्त्र इससें मूक्त होने की चर्चा भी करते हैं । बहुत सारे मार्ग है, उपाय है। जो हमारे इन निषेधों को मिटा देते है। पहला तो अगर भूल हो गई है, तो अपने भूल की माफी माँग ली जाए। जिसके साथ हमनें कुछ गलत किया हो उससें क्षमायाचना हो। ये उत्तम मार्ग है और भी

आध्यात्मिक साधन है, लेकिन ईश्वर को जो साधन प्रसन्नता दे सकता है। वो क्षमा का मार्ग है। अपने मूल को बताकर उससे क्षमा माग ली जाए। लेकिन इसमें एक और बात है, अगर अगर सामने वाला हमें क्षमा न करे तो फिर क्या करे, हमने तो प्रर्थाना की लेकिन पूरी तरह वो क्षमा नहीं दे पाया, क्योकि हम समान्य मनुष्य जो निरन्तर अन्त्रमन की प्रवृत्तियों से घिरे रहे है। ऐसे में बहुत कठिन होता है, कि ईश्वरीय गुणों को धारण कर पायें। चूंकि क्षमा ईश्वरीय गुण है, तो ये थोड़ा कठिन है।

इसके लिए ईश्वर के साथ में जाना उपयुक्त होगा। हम सभी ईश्वरीय अंश है। सभी के भीतर वो अंश रूप में विद्यमान है। जिसके प्रति कुछ गलत कर्म हो गया है। उसके हृदय में विद्यमान ईश्वर को स्मरण कर क्षमा, प्रर्थाना भी एक उपाय है, और ईश्वर तो इतने करूणा सम्पन्न है कि अगर हमनें सच्चे हृदय से क्षमा याचना कर ली फिर वो देर कहाँ लगाते है।

अध्यात्मिक पथिक को भी अगर कभी ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़े तो बिना निराश हुए अपने कर्मो को ईश्वर के चरणों में अर्पित करके निर्भय होना चाहिए। मानव जीवन ईश्वरीय संरचना है। भगवन प्राप्ति हेतु एक साधन स्वरूप है। ईश्वर की शरणागति सारे कर्मा

को और उसके फल को स्वीकार कर हमें भार रहित कर देती है। भगवान ने गीता में कहा है- हर समय परिस्थिति में मेरा स्मरण कर परमात्मा को स्मरण करते हुए अपने हर कार्य को सम्पन्न करना आध्यत्मिक पथिक का उद्देश्य होना चाहिए। अगर कभी कोई नियम भंग भी हो जाए तो वो हमें सम्भाल लेगें। शर्त ये है, कि समर्पण दृढ़ हो।

इस प्रकार अगर हम भगवत् प्राप्ति के मार्ग पर है, और अगर कुछ भूले हो जाए तो निराश होने की जरूरत नहीं। एक दृढ़ विश्वास, एक समर्थन का भाव हमें सहेज कर रखेगा। फिर वो तो दीनबन्धू है, दीनानाथ है। जैसे ही अपने अहंकार को हटा कर हम प्रर्थानाओं में बैठ जाए तो उनका हृदय पिघलने लगता है। सुख- दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजय मानव जीवन की दो पलड़े है। जीवन में कोई कष्ठ दुःख पीड़ा है भी तो उसे एक ईश्वरीय विश्वास के साथ स्वीकार कर आगे मार्ग पर कदम बढ़ाना चाहिए। प्रारम्भ वश कुछ दोष बन पाये अथवा कष्ट आ पड़े तो विचलित हुए बिना अपने लक्ष्य की ओर कदम बढ़ाना चाहिए।

संतो के जीवन में भी ये बात दृष्टिगोचर होती है। जब उन्होनें अपने कर्मो को और उसके फलो को ईश्वर को अर्पित कर दिया और ईश्वरीय अनुभूति को अपने स्वरूप को उपलब्ध हो गए। अनेकानेक उदाहरण है, जब अपनी दुर्बलताओं को छोड़ कर ईश्वरीय विश्वास एवं समर्थन के कारण भगवत् स्वरूप बन गये। ये उदाहरण हमारे लिए एक मजबूत आधार है कि कुछ भूले, कुछ निषेध हमारे मार्ग

को अवरोहित नहीं कर सकते। मनुष्य जीवन ईश्वर प्राप्ति हेतु एक साधन स्वरूप हैं। इसे स्मरण कर आगे का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

"नच प्राण संज्ञो न वै पञ्चवायुः
न वा सप्तधातु: नवा पञ्चकोशः
न वाक्पाणिपादौ न च उपस्थ पायुः
चिदानंदरूप: शिवोहम शिवोहम ||

भगवन ने भी गीता में कहा है, कि सारे शुभ- अशुभ कार्य शरीर द्वारा सम्पन्न होते है। जिसकी उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। आत्मा शरीर के कार्य में लिप्त नहीं है। तात्पर्य है कि आध्यात्मिक पथिक जो कभी भवबंधन में पड़ जाए या भगवत् पथ से विमुख हो जाए तो निराश होने की आवश्यकता नहीं है। ग्रन्थों में जगह- जगह ये बात आई है, कि जीवात्मा शुध्द है, बुध्द है, प्रबुध्द है, चैतन्य है। इसमें कहीं दोष नहीं। एक ईश्वरीय विश्वास को साथ लेकर आगे का मार्ग तय करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

आश्रम एक व्यवस्था

आध्यात्मिक जीवन साधनों के माँग को दर्शाता है। अर्थात् साधनों के द्वारा अपने उद्देश्य लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। शास्त्रों, ग्रन्थों में मनुष्य को जीवन-यापन करने के महत्वपूर्ण अवस्था अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए आश्रम व्यवस्था का वर्णन है। जीवन काल की उपस्थिति के अनुसार इसे विभाजित किया गया है। आरम्भिक अवस्था ब्रह्मचर्य, इसके पश्चात् गृहस्थ अगला वानप्रस्थ और आखिरी सन्यास। ये विभाजन ऋषि के द्वारा किया गया है। जो आज भी उतना ही प्रमाणिक है। ब्रह्मचर्य की अवस्था में शास्त्र ग्रन्थों के अध्ययन को प्राथमिकता दी गई है। जो शिक्षा देश काल के अनुसार यथोचित हो उसे पूरा करना ब्रह्मचर्य आश्रम का कर्तव्य है। इसके पश्चात् गृहस्थ में प्रवेश बताया गया। चूँकि सृष्टि ईश्वरीय संरचना है, तो उसकी वृध्दि और निरन्तरता आवश्यक है। गृहस्थ आश्रम इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। इसके पश्चात् वानप्रस्त अर्थात प्राकृति के निकट आकर ईश्वर के स्वरूप, गुण, धर्म को अपने अनुभव में उतारना। जैसे कि नाम में अर्थ प्रकट होता है, वानप्रस्थ जो प्राकृति के निकटता का सूचक है। अंतिम सन्यास। जब ईश्वरीय गुण, धर्म, प्रकृति की

निकटता मिली तो अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए के लिए महत्वपूर्ण आखिरी पड़ाव सन्यास है। सभी अश्राम अपने गंतव्य तक पहुचने के मार्ग है। हम जिस किसी भी आश्राम व्यवस्था के अंग हो अखिरी बात अपने अनुष्य जीवन की सिद्धी है। सभी आश्रामों के अलग-अलग नियम विधि निषेध है। उनका पालन करना प्राणी मात्र का धर्म है। धर्म शब्द यहाँ किसी नियम व्यवस्था का घोषक नहीं। अगर हमनें मनुष्य जीवन पाया है, तो बस एक ही धर्म है, अपने स्वरूप की उपलब्धियाँ जब हम इस दिशा में अपना कदम बढ़ाते हैं, तो शरीर में धर्म का निर्वाह अपने आप होने लगता है। क्योंकि ईश्वर एक बड़े व्यवस्था का नाम है। उसकी प्राप्ति के लिए भी जीवन व्यवस्थित होना चाहिए। अपने वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुकूल होना चाहिए। ईश्वरीय पथ की दूरी हम अस्त-व्यस्त अवस्था में कभी भी पूरी नहीं कर पायेगें। अर्थातः हमें इन्द्रियों को, मन को, बुद्धि को, भी एक अनुशासन में लाना होगा। इसी अनुशासन का नाम वर्णाश्रम व्यवस्था है। जो मानव को एक अनुशासित जीवन पद्धति से जोड़ती है।

सभी आश्रम अपने आप में महत्व के है। अर्थात् सभी को आधार बनाकर अपने लक्ष्य को पाया जा सकता है। इसलिए संतजन कहते है, आप जहाँ हो वही से ईश्वर पथ की यात्रा शुरू करो, किसी समय स्थिति का आग्रह की

अवश्यकता नहीं। हाँ अगर फिर भी लगता है कि किसी व्यवस्था में चेतना और उन्नत हो सकती है, तो फिर वो मार्ग भी सही है।

एक और बात है अगर हम आश्रम व्यवस्था को अलग रखे तो प्रत्येक मनुष्य अपने आप में चारों गुणों से युक्त हो सकता है। उसके लिए किसी विशेष पध्दति की आवश्यकता नहीं है। जैसे अगर हम अध्ययन-अध्यापन कर रहे हैं, और विचार भाव कि पवित्रता है, तो ये ब्रह्मचर्य का सूचना है। वही प्राकृति के संतुलन को अथवा सृष्टि के निरन्तरता का प्रयास कर रहे है, तो गृहस्थ हैं। अथवा मनसा, वाचा, कर्मणा अपने कुटुम्ब की वृध्दि का भाव मन बुद्धि कर रही है, तो वो भी निरन्तरता को बढ़ाने का प्रयास ही है। इस मायने में सभी गृहस्थ हैं। हम सभी कभी ना कभी जीवन में प्राकृति की तरह बिल्कुल निष्काम भावना के साथ कोई कार्य करते ही रहते हैं। जब कर्म में से अहमता, ममता समाप्त हो जाती है। तो उस समय हम सभी वानप्रस्थी है। और अखिर में सन्यास जिसमें निष्कामता की भावना भी खो जाए। जीवन का वो समय काल जब हमें ये प्रतीत होने लगे कि सभी ओर ईश्वर कि प्रतिबिम्ब है, और उसका ही तो ये सन्यास की अवस्था है।

तात्पर्य है कि हम जिस किसी भी अवस्था में, देश काल में किसी भी व्यवस्था में हो अपने स्वरूप को उपलब्ध हो सकते हैं। भगवत गीता में कहते है- जो अनासक्त है,

कर्म फल का त्यागी है, जो अपने निर्दिष्ट नियम या कर्तव्य को कभी त्यागता नहीं, जो ईर्ष्या द्वेष रहित है, अपने-अपने कर्म के गुणों का पालन करते हुए प्रत्येक व्यक्ति सिद्ध हो सकता है। अर्थात् अपने स्वरूप को उपलब्ध हो सकता है।

इस प्रकार हम जिस किसी भी व्यवस्था में हो अपने इंद्रिय मन बुध्दि से पार पाना उद्देश्य है। इंद्रियों का संयम हो, मन की चंचलता से मुक्त हो और विचार की प्रखरता को प्राप्त करे, तो वो लक्ष्य पाया जा सकता है।

शास्त्रों की सारी व्यवस्थाएँ मनुष्य को एक अनुशासन में लाने का प्रयास मात्र है। ताकि वो अपने स्वरूप को उपलब्ध हो सके। शास्त्र कभी भी किसी मनुष्य को बंधन मुक्त नहीं होने देते। हम जहाँ भी रहे, जैसे भी रहे शास्त्र हमें बंधनों में बांधकर अनुशासित जीवन की राह दिखाते हैं। यही अनुशासन जीवन में ईश्वर अनुभूति का मार्ग बनता है। जिस दिन वो स्मृति वापस मिल जाती है। सारी व्यवस्थाओं को हम पार कर उस अनंत के साथ एकता को अनुभव करने लगते हैं। आश्रम व्यवस्था हर युग, हर काल, हर स्थिति में समाचिन है। इसका उदेश्य सिर्फ और सिर्फ मानव जीवन को एक व्यवस्था प्रदान करना है। ताकि हम अपने मनुष्य जीवन के उद्देश्य को पूरा कर सके।

अध्यात्मिक होने का अर्थ

अक्सर हम अध्यात्मिक जीवन को कुछ कर्म काण्ड, पूजा-पाठ, यज्ञ अनुष्ठान से जोड़ कर देखते हैं। कोई व्यक्ति अध्यात्मिक है, तो हमारा अभिप्राय यही होता है, कि वो किसी धार्मिक क्रियाकाण्ड से जुड़ा होगा। अथवा वो किसी धर्म सम्प्रदाय उसकी कार्य-शैली का क्षेत्र होगा। हम सभी अध्यात्मिकता का अर्थ इन्ही चन्द परिभाषित शब्दो में ढूंढते रहते है, और अपने आपको अध्यात्मिक होने से बचाने का प्रयास भी करते हैं। आखिर आध्यात्मिक विचार इस प्रकार के संकिर्णता का शिकार क्यों हैं? आईये कोशिश करते हैं जानने की।

सबसे पहले तो ये बात मन से निकालनी होगी कि अध्यात्मिकता किसी धर्म, सम्प्रदाय की द्योतक है। हम सभी मनुष्य अध्यात्मिक प्राणी ही है। कही न कही हमारे भीतर वो भावना गुप्त रूप से बैठी है। किसी-किसी में उजागर हो जाती है, तो हमारे लिए आश्चर्य का विषय हो जाता है। हम उस व्यक्ति को अन्य लोगों से अलग देखने लगते हैं। कभी-कभी तो भयभीत भी हो जाते है, कि कहीं हमारी किसी चेष्टा से वो नाराज होकर हमें दण्डित न करे। अगर कोई व्यक्ति अध्यात्मिक चर्चा अथवा ज्ञान की बातें शास्त्रों की बातें, ग्रंथों की बातें करते है तो हमारे लिए वो कौतूहल बन जाता है। कारण सिर्फ यही है कि हम

ज्यादातर लोग अपना जीवन इस विचार धारा से अलग होकर जीते है। अध्यातक हमारा स्वभाव है। पशु-पक्षी या किसी जानवर में अध्यात्मिक भाव-भावना नहीं होती। आखिर क्या कारण है, कि सिर्फ मनुष्य ही इस विचार को लेकर जीता है। कारण यही हैं कि मनुष्य की चेतना शक्ति या विचारशक्ति हमारा मस्तिष्क इतना विकसित होता है, कि वो अध्यात्म की गहराईयों को छू सकता है। अन्य प्राणीयों में वो योग्यता नहीं होती। अध्यात्म को अगर हम गौर से अनुभव करे तो ये जीवन जीने की एक कला का नाम है। मानव जीवन अनमोल है। ईश्वरीय उपहार है। इसमें कई भावनाएँ, संवेदनाएँ, आकं ाक्षाएँ, महत्वकांक्षाएँ अपना स्थान रखती है। हम सभी मनुष्य इन्हीं में अपना जीवन तलास्ते है, कई बार भावनाओं में बह जाते है, तो कई बार महत्वकांक्षाएँ हावि होने लगती है। ऐसे में कई बार जीवन डावाडोल सा हो जाता है। अगर हमारे पास अध्यात्मिक विचार होगें तो हम ना तों भावनाओं में बहेंगें ना ही अपनी इच्छाओं में डुबेंगें। बल्कि एक संतुलन पैदा करने का सार्थन हमारे पास आ जायेगा। अगर अध्यात्मिक विचार साथ होगें। बस इसी संदर्भ में अध्यात्मिकता की अवश्यकता मनुष्य को है। इसका प्र ्माण भी मौजूद है। भूत में भी और वर्तमान में भी, कि कैसे अध्यात्मिकता का सहारा लेकर जीवन को एक ऊँचाई पर पहुँचाया जा सकता है।

इसमें एक बात और जोड़ना चाहुँगी, कि कई बार हमारे धार्मिक क्रियाकाण्ड भी लोगों को अध्यात्मिकता से दूर कर देते है। जबकि अध्यात्म का धार्मिक क्रियान्वयन से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। अध्यात्म तो हमें अपने स्वभाव में लौटाता हैं। हम मानवता के निकट आते हैं। सत्संग, महापुरूषो की वाणी स्तरीय पुस्तकों का अध्ययन से विचार पवित्र एवं बुध्दि प्रखर बनती हैं। आजतक जो हमारें आस-पास जीवन निर्माण सम्बन्धि पुस्तको का अम्बार लगा है, वो पुस्तके भी महापुरूषों की वाणी उनके विचार को ही आधार बनाकर लिखी गई है। इसलिए अध्यात्मिक होने का अर्थ बस यही है, कि हम जीवन को सुनियोजित, सुचारूपूर्ण एवं एक समन्वयित दृष्टिकोण के साथ जी सके। इस प्रकार से अध्यात्मिक होने का अर्थ है। मनुष्यता के गुणों से भरना। क्योंकि हम जीवन तो मानव का जी रहे हैं लेकिन कई प्रकार की अमानविय अगुणों को भी धारण किये हुए हैं। अध्यात्मिक विचार धारा हमें एक उन्नत जीवन जीने में अहम् भूमिका निभायेगी।

अध्यात्म की प्रासंगिकता

मानव जीवन ईश्वर की अनमोल रचना है। शास्त्रों में हर जगह ये घोषणा मिलती है, कि मनुष्य ईश्वर का ही एक रूप है। लेकिन इसकी स्मृति वो भूल गया है। जितनी भी अध्यात्मिक साधनाएँ हैं। सभी उसे खोई हुई स्मृति को पुनः पाने के लिए ही बनाई गई है। जब तक हम मनुष्य अपने मूल स्वरूप को उपलब्ध नहीं हो जाते ये साधनाएँ चलती रहेगी। पूजा, अर्चना, वन्दना, अभिषेक, जप, तप, नियम, व्रत, सभी कुछ ही अपनी खोई स्मृति को पुनः पाने का एक प्रयास मात्र है।

लेकिन एक प्रश्न मन मस्तिष्क को तरंगित करता है, कि क्या जब हमारे चारो ओर आधुनिकतावादी महौल बिखरा हुआ है। हर ओर भौतिकता ने अपना राज्य कायम कर रखा है। हम ज्यादा से ज्यादा धन, मान, सम्मान पाने की होड़ में एक- दूसरे को पीछे छोड़ देना चाहते हैं। ऐसे में एक अध्यात्मिक भाव-भावना कितनी अपयोगी हो सकती है। कई बार तो अध्यात्मिक विचार वाले व्यक्ति को हम संपन्नता की दौड़ में पिछड़ा हुआ भी मानने से चुकते नहीं। आज के माहौल में जब हम अपनी प्रगति का आधार अपनी भौतिक साधनों को मानने लगे हैं, क्या ऐसे में अध्यात्मिकता जीवन के इस काल में प्रसंगिक है? आखिर क्या कारण है कि हमारी अध्यात्मिक भाव भावना कुछ लोगों के लिए मानसिक दुर्बलता लगती है। आज ईश्वर के

अस्तिव पर क्यों हम प्रश्न चिन्ह लगाते नजर आते हैं। ये कुछ प्रश्न उस व्यक्ति के लिए चुनौतिपूर्ण है, जो अध्यात्मिक विचार के आस-पास अपने अस्तित्व को खोजने की कोशिश में लगा हुआ है। इसलिए कोशिश करते हैं, इसके तह में उतरने की।

सबसे पहले तो हमें अध्यात्मिक विचार धारा का मतलब समझना होगा। कई बार हम अध्यात्मिकता को संर्किणता से जोड़ने लगते हैं। इसे किसी धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल-परम्परा से सम्बन्धित करने लगते है। जबकि अध्यात्मिक भाव-भवना का अर्थ है। इसमें कहीं भी संकिर्णता नहीं है। सीधे-सीधे कहे तो आध्यात्मिकता का अर्थ है, कि हम अपने मानवीय गुणो के आस-पास होते हैं। मानवता की भाव-भावना ही अध्यात्मिकता है। आज जब हमारे चारो तरफ घोर अमानवीय घटनाओं एवं नाना प्रकार के कुरीतियों ने अपना पाँव पसार रखा है। चाह कर भी हम इनसे बाहर नहीं आ पा रहे है। हमारी सभ्यता संस्कृति हमारी प्रगति की द्योतक है। इसमें कही भी दोष नहीं है। लेकिन समय के साथ-साथ कई दुर्गुणों के आ जाने से हम अपने मूल से बाहर आ गये हैं। ऐसी हालत में अध्यात्मिकता एक अहम् भूमिका निभा सकती है। जो कुरूतियाँ अथवा दुर्गुण आ गये हैं। इसे दूर करने में अध्यात्मिक भावना निर्णायक भूमिका निभा सकती है। क्योंकि अध्यात्मिक होने का अर्थ हैं। कि हम मानवता के पास रहे। जिससे संकीर्णता हमसे दूर रहेगी।

अध्यात्मिक जीवन में सत्संग को अथवा तों स्तरीय पुस्तको का अध्ययन-मनन-चिंतन को मुख्य माना गया है। इसका कारण सिर्फ इतना है, कि हमारे विचार पवित्र हो सके। क्योंकि हम हमारे विचार पवित्र हो सके। क्योंकि हम जो कुछ सुनतें है, पढ़ते है। उसी अनुरूप हमारे मन का निर्माण होता है। बुद्धि भी उसी अनुसार प्रखर बनती है। अगर अच्छे उच्च विचारों को जीवन में जगह दी जाए तो जीवन को एक सही दिशा-दशा हम प्रदान कर सकतें है। आज जो भौतिकता वादी माहौल हमारे आस-पास पैर पसार रहा है। ऐसे में कई प्रकार के तनाव जीवन में हावी होने लगे है। आधुनिकता ने जहाँ मानव जीवन को लाभांवित भी किया है, वही इसके दुष्परिणाम से हम अछूते नहीं है। अगर हम अच्छे विचारों का संग करे तो हमारे चारो ओर एक सीमा रेखा का निर्धारण हो जाएगा। अर्थात् जो आवश्यक है सिर्फ उतनी ही प्रगति हम जीवन में ला सकेंगे। इससे दो फायदे होंगे, एक तो तनाव कम होगा दूसरा जीवन सही दिशा में आगे बढ़ता चला जाएगा। एकाग्रता में वृद्धि होगी। आज जो बच्चों में अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होने के बाद का अवसाद है, पीड़ा है, जो नवपीढ़ी को गहरे दलदल में धकेल रही है, उसमें अध्यात्मिकता की भाव-भावना औषधि का कार्य करेगी।

अब तो प्रमाण मौजूद है, कि किस प्रकार अध्यात्मिक भावना का उपयोग निजी कम्पनियोँ अपने कर्मचारीयों को उत्सुक, जागरूक एवं तनाव मुक्त करने के

लिए कर रही है। स्कूल कालेजो में भी आज अध्यात्मिक सत्र का आयोजन इस बात का प्रमाण बन गया है, कि अगर कही प्रसन्नता का केन्द्र है, तो वो अध्यात्मिक विचार ही है।

इस प्रकार अगर हम अपने घरों में भी अपने बच्चों के लिए रोज कुछ अध्यात्मिक विचार उनके सामने रख सके तो, मुझे लगता है। कि एक ऐसी नवपीढ़ी तैयार हो जाएगी जो संकीर्णता से दूर, एक तनावमुक्त जीवन शैली को ला सकेगी। अध्यात्म एक ज्योति है। जो अपनी रोशनी में मानव जीवन को एक सही दिशा प्रदान करने में अहम् भूमिका निभायेगी।

अध्यात्म एक राह

मनुष्य जीवन ईश्वर की मूल्यवान कृति है। शास्त्रों ग्रंथों में आया है, हम ईश्वरीय अंश है। हम उस विराट सत्ता के अंश रूप ही है। जिस दिन भी हमारी चेतना उन्नत हुई और कही अगर हमने उन ऊँचाईयों को प्राप्त कर लिया फिर हम उसी विराटता को महसूस कर सकंेगे। उस विराटता अंतता को अनुभव करना कोई कठिन कार्य नहीं है। हर जगह शास्त्रों में ग्रंथों में इसकी चर्चा आती है, कि कैसे हम अपने स्वरूप को उपलब्ध हो सकते हैं।। इस दिशा में अध्यात्म शब्द बड़ा महत्पूर्ण हैं।। अध्यात्म का अर्थ होता है। अपने पास आना अथवा लौटना। जब हम अपने स्वरूप को, जो हमारी वास्तविक पहचान है, उस ओर कदम बढ़ते है, तो ये अध्यात्म शब्द अपना अर्थ प्रकट करता है। अध्यात्म एक सरस, मधुर, सुगम एवं आनन्दपूर्ण मार्ग है, जो ईश्वरीय सत्ता से हमारा परिचय करता है।

हम सभी मनुष्य अध्यात्मिक प्राणी ही है। कहीं न कहीं, कभी न कभी ईश्वरीय सत्ता में विश्वास को प्रकट करता कोई व्यवहार, कार्य अथवा घटना जीवन में होती ही रहती है। इसके बावजूद भी कभी- कभी बड़ा कठिन सा

हो जाता है। जब कभी मन में परमात्मा के प्रति अविश्वास का भाव व्याप्त हो जायें। उसे जीवन का दुर्भाग्यपूर्ण क्षण कह सकते है। कारण जो कुछ भी हो आखिरी बात यहीं निकल कर आती है, कि हमनें ईश्वर के स्वरूप को समझे बिना ही, अपनी क्रियाओं द्वारा अपने लिए अनुकूलता चाही और वो प्राप्त नहीं हो सकी, तो एक निराशा या यूं कहें कि नास्तिकता की भावना ने हमें अपने घेरे में ले लिया। मान लो आपनें ईश्वर से प्रर्थाना की, ताकि आपकी यात्रा सुखद हो। अनुकूल परिणाम नहीं आना और आपको संदेह ने ये सोचने पर विवश किया कि शायद ईश्वर नाम की कोई सत्ता है, ही नहीं ये संत कहते है, कि "इस बात को तो साबित किया जा सकता है कि ईश्वर है। लेकिन इस बात को कभी साबित नहीं किया जा सकता, की वो नहीं है। "बड़े- बड़े वैज्ञानिक भी जो रात-दिन प्रयोशालाओं में हर चीज का सच खोजने में लगे है। उन्होने प्रयोगशाला के उपकरणों के माध्यम से ये पता लगा लिया है कि किस वस्तु का क्या अस्तित्व है। उन्होने ने ही अब एक "ईश्वरीय तत्व" की चर्चा की है। जिसे हम "ळव्क् चंतजपबंस" कहते है। हम अक्सर अपने जीवन की छोटी-बड़ी घटनाओं को

आधार बनाकर ईश्वर की सत्यता को परखने की कोशिश करते रहते है। और जब मन को अनुकूल परिणाम हाथ नहीं आता, तो उसकी उपस्थिति पर ही संदेह होता है।

इसमें अब दो बातें है। शास्त्र कहते हैं- हमें जन्म से ही दो चीजें मिली है- एक कर्म की स्वतंत्रता और दूसरी विचार की शक्ति। दोनों मामलो में हम स्वतंत्र हैं। जैसा हमारा कर्म होगा, फल की प्राप्ति भी उसी के अनुसार होगी। अपने विचार की शक्ति का उपयोग कर हम महान बन सकते हैं, अथवा वो बिल्कुल नीचें के स्तर तक भी आ सकते है। अब इसमें दूसरी बात उठ सकती है, कि जब कर्म ही प्रधान है, और अपना विचार की हमारी उन्नति का माध्यम है, तो फिर ईश्वर की उपस्थिति अथवा विश्वास का क्या प्रयोजन है। यही सोच कभी-कभी हम मनुष्यों को उस परम् सत्ता से विलग कर देती है।

अब इसमें दो बातें हैं। पहली कि अगर आप कर्म की शक्ति में विश्वास करतें है, तो परमात्मा सिर्फ आपके लिए एक दृष्टा है। अर्थात् सिर्फ देखने वाला हैं। वो अपको अच्छे कार्यो के लिए प्रोत्साहित भी नहीं करेगें और बूरें कार्यो के लिए रोकेगें भी नहीं। अगर हम कर्म की प्रधानता अथवा विचार की उच्चता को आधार बनाकर जीवन जी रहें हैं, तो

ईश्वर मात्र दृष्टा है। हो सकता है, जब कर्म करते-करते आपका हृदय निष्काम बन जायें अर्थात् कर्म सिर्फ और सिर्फ जीवन निर्वाह का साधन मात्र बन जाए। विचार बिल्कुल पवित्र हो जाये। तो यही कर्म और विचार आपके लिए उस ईश्वरी सत्ता के विश्वास का माध्यम भी बन जाये। ऐसा भी हो सकता है। जब आपका कर्म कर्मयोग बन जाए। फिर वो ईश्वरीय अनुभूति का माध्यम है। दूसरी बात ये है, कि हम एक ईश्वरीय समर्पण के साथ जीवन को जीये। जो कुछ भी हम करे, उस एक परमात्मा को अर्पित करते चलें। अगर कुछ अच्छा हो जाये तो भी तू जाने और कुछ अनुचित हो जाये उसका भार भी उसके उपर ही छोड़ दे। अर्थात् हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया उस ईश्वर को समर्पित हो। जैसे आप कही जाने के लिए बस में बैठ गये। आपका काम सिर्फ टिकट लेने तक का था। अब आपको कोई फिकर नहीं होती, कि बस में डिजल है, कि नहीं यात्रा कैसी है। आप तो सो भी गयें। अब जिम्मेंदारी ड्राइवर की है, कि वो आपको सही सलामत पहुँचायेगा। वैसे ही समर्पण की भावना एक निश्चिंतता प्रदान करती है।

अध्यात्म जीवन को एक सुदृढ़ आधार प्रदान करता है। अध्यात्मक का अर्थ बड़ा व्यापक है। वो मनुष्य जीवन को सहज बनाने का एक मात्र आधार है। अध्यात्म में

संकीर्णता नहीं है। न ही अंधविश्वास है। ये तो वो मार्ग है, जो बिलकुल सरलता से आपको उस परम सत्ता से जोड़ देती है। दया, करूणा, उदरता, क्षमा, समता,प्रेम ये ईश्वरीय गुण है। अध्यात्म इन गुणों को हमारें भीतर स्थापित करता है और ये भी बताता है, कि इन गुणों का उपयोग कब कहाँ और कैसे करना है?

जैसे हम मनुष्यों में कोई न कोई अध्यात्मिक गुण कम ज्यादा मात्रा में होते है। जैसे हमारें अन्दर अगर उदारता है, तो हम किसी को क्षमा करनें अथवा वो मदद् करनें के लिए हमेंशा तैयार रहते हैं। कभी स्थितियाँ वैसे ही होती है, जैसी दिख रही होती है। अध्यात्म वों दृष्टि प्रदान करता है, कि हम सब को पहचान सके। एक शब्द में कहें तो अध्यात्म जीवन में मात्रा को सुनिश्चित करता है। कि कितनी मात्रा में हम अपने सद्गुणों का उपयोग करे। कभी कभी हम करूणा में, प्रेम में, दया में इतने गहरे उतर जाते है कि भावुकता के शिकार भी हो सकते है। अध्यात्म इन मात्राओं को हमारें जीवन में तय करता है। एक अध्यात्मिक व्यक्ति चाहे वो किसी भी धर्म, सम्प्रदाय, जाति, कुल में पैदा हुआ है, इतनी बात तो तय है, कि उससे

मनुष्यता की हानि कभी नहीं हो सकती। अर्थात् वो कभी ऐसा कुछ नहीं करेगा जो दूसरे को नुकसान पहुँचाये, और जो दूसरे के हित की चिंता करे, वो अपना अहित कभी नहीं होने देगा। इसलिए अध्यात्मिकता मनुष्य जीवन को पहली और आखिरी मांग होनी चाहिए।

इसमें एक और बात में जोड़ना चाहूँगी कि हमें अपनी नई पीढ़ियों को भी अध्यात्मिकता से जोड़ना होगा। आज जो अमानवीय घटनाए हमारें चारो ओर अपना पैर जमा रही है, कहीं न कहीं उसके मूल में यही बात है कि हम अपनी मनुष्यता से दूर चले गये। मानवीय गुणों से परे चले जाना ही, अमानवीय घटनाओं के लिए जिम्मेदार है। जहाँ से हम अपनी खोई हुई मनुष्यता को पा सकेगें वो अध्यात्म पथ हैं।

इस प्रकार अगर अध्यात्म को केन्द्र में रखकर जीवन को जीना जाये तो पूरा विश्व एक कुटुम्ब बन कर, इस पूरी सृष्टि को वषुधैव कुटुम्बकम् की भावना से ओत-प्रोत कर पाएगा। अध्यात्म एक शक्ति है, जो हमें कठिन से कठिन परिस्थिति में ही, हौसला देने का कार्य करती है। जब जीवन में बहुत अनुकूलता हो। धन, मान सम्मान आपके

चारों ओर बिखरे हुए हो, ऐसे में अध्यात्मिकता भटकाव से बचाती है, और जब घोर निराशा हो, किसी प्रकार का अभाव हो, तो अध्यात्मिक भावना एक दृढ़ ईश्वरीय विश्वास को पैदा कर हमें गिरने भी नहीं देती। अध्यात्मिक भाव-भावना जहाँ हमारे कर्म को सही दिशा प्रदान करेगी। वही विचारों को भी उन्नत करेगी। ईश्वरीय समर्पण एवं विश्वास को बढ़ा कर हमारे लिए जीवन में अनुकूलता एवं प्रतिकूलता में एक संतुलन पैदा करेगी। पूरी मनुष्य जाति के लिए अध्यात्म एक मशाल है, जिसकी रोशनी में हम अपने जीवन की यात्रा पूर्ण कर सकेंगे।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - अलका रागिनी
पति - शशि मिश्रा
जन्म - 12.01.1981
शिक्षा - स्नातक (इतिहास)
पता - अलका रागिनी, रुसत्मजी थाने, साकेत रोड़ अजियानो, अ-2604, माझिवाडा थाने, मुम्बई
मो.नं. - 9820484008
रचनाएँ
1. जीवन के पड़ाव (लेख संग्रह)
2. आत्म निवेदन (आध्यात्मिक लेख संग्रह)
3. मंजिल के आगे (लेख संग्रह)
4. जीयें तो जीयें कैसे (आलेख संग्रह)

सम्मान - वुमन आवाज 2018

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com
१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com
978-93-86666-16-1
मूल्य- 55/-